जैन कला : विकास और परम्परा

☐ डॉ० शिवकुमार नामदेव
प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास
शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद ४६१००२ (म०प्र०)

जैन धर्म का क्रान्तिदर्शी विकास छठवीं शती ई० पू० से हुआ, जब इस धर्म के २४वें एवं अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने अपने नये विचारों एवं कार्यों से इसे नया जीवनदान दिया। जैन मतानुयायियों के अनुसार इस धर्म की प्राचीनता प्रागैतिहासिक है। उनके अनुसार मोहनजोदड़ो से प्राप्त योगी की मूर्ति इसके आदि प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की है। यही नहीं वेदों में उल्लिखित कतिपय नामों को जैन तीर्थंकरों के नामों से जोड़ा गया है। साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि जैन धर्म विश्व का एक प्राचीन धर्म है। प्रस्तुत लेख में जैन धर्म की प्राचीनता एवं विकास का जैन मूर्तिकला, वास्तुकला एवं चित्रकला के माध्यम से निरूपण किया गया है।

भारत की प्राच्य संस्कृति के लिए जहाँ जैन साहित्य का अध्ययन आवश्यक है, वहीं जैन कला का अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न ललित कलाओं के क्षेत्र में जैन धर्म की देन रही है। ई० पू० दूसरी सदी से जैन धर्म के प्रसार में कला का व्यापक रूप से प्रचार किया गया।

मूर्तिकला

मूर्तिकला के क्षेत्र में जैन कला ने अर्हन्तों की अगणित कायोत्सर्ग तथा पद्मासन ध्यान-मग्न मूर्तियों का निर्माण किया है; इन मूर्तियों में कितनी ही तो चतुर्मुख एवं कितनी ही सर्वतोभद्र हैं।

भारत की प्राचीनतम मूर्तियाँ सिन्धु सभ्यता के उत्खनन से उपलब्ध हुई हैं। इस सभ्यता में प्राप्त मोहनजोदड़ो के पशुपति को यदि शैव धर्म का देव मानें तो हड़प्पा से प्राप्त नग्न धड़ को दिगम्बर मत की खण्डित मूर्ति मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।[1]

सिन्धु सभ्यता के पशुओं में एक विशाल स्कंधयुक्त वृषभ तथा एक जटाजूटधारी का अंकन है। वृषभ तथा जटाजूट के कारण इसे प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ का अनुमान कर सकते हैं।[2] हड़प्पा से प्राप्त मुद्रा क्रमांक ३००, ३१७ एवं ३१८ में अंकित प्रतिमा आजानुलम्बित बाहुद्वय सहित कायोत्सर्ग मुद्रा में है।[3] हड़प्पा के अतिरिक्त उपर्युक्त साक्ष्य हमें मोहनजोदड़ो में भी उपलब्ध होता है।[4]

---

१ स्टडीज इन जैन आर्ट—यू० पी० शाह, चित्र फलक क्रमांक १.

२ सरवाइवल आफ दि हड़प्पा कल्चर—टी० जी० अर्भूथन, पृ० ५५.

३ एम० एस० वत्स, हड़प्पा, ग्रन्थ १, पृ० १२९-३०, फलक ९३.

४ वही, पृ० २९, मार्शल—मोहनजोदड़ो एण्ड इट्स सिविलाइजेशन, ग्रन्थ १, फलक १२, आकृति १३, १४, १८, १९, २२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय कला का क्रमबद्ध इतिहास मौर्यकाल से प्राप्त होता है। मौर्यकाल में मगध जैन धर्म का एक प्रमुख केन्द्र था। इस काल की तीर्थंकर की एक प्रतिमा लोहानीपुर[1] (पटना) से उपलब्ध हुई है। प्रतिमा पर मौर्यकालीन उत्तम ओप है। बैठा वक्षस्थल तथा क्षीण शरीर जैनों के तपस्यारत शरीर का उत्तम नमूना है। पार्श्वनाथ की एक कांस्य मूर्ति जो इसी काल की मानी जाती है, कायोत्सर्गासन में है। यह प्रतिमा सम्प्रति बम्बई के संग्रहालय में संरक्षित है।

शुंगकाल में जैन धर्म के अस्तित्व की द्योतक कतिपय प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। लखनऊ-संग्रहालय[2] में सुरक्षित एक शुंग-युगीन कवाट पर ऋषभदेव के सम्मुख अप्सरा नीलांजना का नृत्य चित्रित है। इस काल के आयागपट्ट कंकाली टीला से उपलब्ध हुए हैं। विवेच्ययुगीन कला का एक महत्त्वपूर्ण रचना-केन्द्र उड़ीसा में था। भुवनेश्वर से ५ मील उ० प० में उदयगिरि खण्डगिरि पहाड़ियों में जैन धर्म की गुफायें उत्कीर्ण हैं। उदयगिरि की हाथीगुफा में कलिंग नरेश खारवेल का एक लेख[3] उत्कीर्ण है, जिससे द्वितीय शती ई० पू० में जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं का अस्तित्व सिद्ध करता है।

शुंग-कुषाणयुग में मथुरा जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ के कंकाली टीले के उत्खनन से बहुसंख्यक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें अर्हत नंद्यावर्त की प्रतिमा प्रमुख है, जिनका समय ८९ ई० है। यहाँ से उपलब्ध जैन मूर्तियों का बौद्ध मूर्तियों से इतना सादृश्य है कि यदि श्रीवत्स पर ध्यान केन्द्रित न किया जाय तो दोनों में भेद करना सहज नहीं है।

कुषाण युग के अनेक कलात्मक नमूने मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुए हैं। इनमें लखनऊ संग्रहालय में संरक्षित आयागपट्ट[4] (क्रमांक जे० २४९) महत्वपूर्ण है। इसकी स्थापना सिंहनादिक ने अर्हत पूजा के लिए की थी। कुषाण संवत् ५४ में स्थापित देवी सरस्वती की प्रतिमा भी प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जैन परम्परा में सरस्वती की मूर्तियों का निर्माण कुषाण-युग से निरन्तर मध्ययुग (१२वीं शती) तक सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय रहा है।

विवेच्य युग में मुख्यतः तीर्थंकर प्रतिमायें निर्मित की गईं जो कायोत्सर्ग एवं पद्मासन में हैं। कंकाली टीले के दूसरे स्तूप से उपलब्ध तीर्थंकर मूर्तियों की संख्या अधिक है। इनकी चौकियों पर कुषाण संवत् ५ से ९५ तक के लेख हैं। प्रतिमाएं ४ प्रकार की हैं—

१. खड़ी या कायोत्सर्ग मुद्रा में जिनमें दिगम्बरत्व लक्षण स्पष्ट है।
२. पद्मासन में आसीन मूर्तियां।
३. प्रतिमा सर्वतोभद्रिका अथवा खड़ी मुद्रा में चौमुखी मूर्तियां, ये भी नग्न हैं।
४. सर्वतोभद्रिका प्रतिमा बैठी हुई मुद्रा में।

मथुरा-संग्रहालय में एकत्रित ४७ जैन मूर्तियों का व्यवस्थित परिचय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने वहाँ की सूची के तृतीय भाग में कराया है। इनमें महाराज वासुदेव कालीन संवत्सर ८४ की आदिनाथ की मूर्ति (बी४), पार्श्वनाथ की मूर्ति (बी० ६२) एवं नेमिनाथ की प्रतिमा (२५०२) महत्त्वपूर्ण हैं। कुषाणकालीन मथुरा कला में तीर्थंकरों के लांछन नहीं पाये जाते हैं।

---

१ निहाररंजन रे, मौर्य एण्ड शुंग आर्ट, चित्रफलक २८, कम्प्रिहेनसिव हिस्ट्री आफ इण्डिया—सं० के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री, चित्रफलक ३८.

२ स्टडीज इन जैन आर्ट—चित्रफलक २, आकृति ५.

३ जर्नल आफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, भाग २, पृ० १३.

४ भारतीय कला—वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० २८२-८३, चित्र क्रमांक ३१८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय इतिहास में स्वर्ण-काल के नाम से अभिहित गुप्तकाल में कला प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुकी थी। इस युग में भी हमें तीर्थंकरों के सामान्य लक्षण मूर्तियों में वे ही प्राप्त होते हैं जो कुषाणकाल में विकसित हो चुके थे, किन्तु उनके परिकरों में कुछ वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता है। प्रतिमाओं का उष्णीष कुछ अधिक सौन्दर्य व घुँघरालेपन को लिए हुए पाया जाता है। प्रभावलि में विशेष सजावट दिखाई देती है। धर्मचक्र व उसके उपासकों का चित्रण होते हुए भी कहीं-कहीं उसके पार्श्वों में मृग भी उत्कीर्ण दिखाई देते हैं। अधोवस्त्र तथा श्रीवत्स—ये विशेषताएँ इस युग में परिलक्षित होती हैं। गुप्तयुगीन जैन प्रतिमाओं में यक्ष-यक्षिणी, मालावाही गन्धर्व आदि देवतुल्य मूर्तियों को भी स्थान दिया गया था।

प्राचीन भारत के प्रमुख नगर विदिशा के निकट दुर्जनपुर ग्राम से रामगुप्तकालीन[1] तीन अभिलेखयुक्त जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से दो प्रतिमायें चन्द्रप्रभ एवं एक अर्हत पुष्पदन्त की है। इन प्रतिमाओं की प्राप्ति से भारतीय इतिहास में अर्द्धशती से चले आ रहे इस विवाद का निराकरण संभव हो सका कि रामगुप्त, गुप्त शासक था या नहीं। बक्सर के निकट चौसा (बिहार) से उपलब्ध कुछ कांस्य प्रतिमायें पटना संग्रहालय में हैं। रामगिरि की वैभार पहाड़ी की वह नेमिनाथ मूर्ति भी ध्यान देने योग्य है जिसमें सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र को पीठ पर धारण किए हुए एक पुरुष और उसके दोनों पार्श्वों में शंखों की आकृतियाँ पायी जाती हैं। इस मूर्ति पर के खण्डित लेख में चन्द्रगुप्त का नाम पाया जाता है, जो लिपि के आधार पर चन्द्रगुप्त द्वितीय का वाची अनुमान किया जाता है। कुमारगुप्त प्रथम के काल में गुप्त संवत् १०६ में निर्मित विदिशा के निकट उदयगिरि की गुफा में उत्कीर्ण पार्श्वनाथ की प्रतिमा का नागफण अपने भयंकर दाँतों से बड़ा प्रभावशाली और अपने देव की रक्षा के लिए तत्पर दिखाई देता है। उत्तर प्रदेश के कहाऊँ नामक स्थान से प्राप्त गुप्त संवत् १४१ के लेख सहित स्तम्भ पर पार्श्वनाथ तथा अन्य चार तीर्थंकरों की प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। इस काल की अन्य प्रतिमायें बेसनगर, बूढ़ी चंदेरी, देवगढ़, सारनाथ आदि से उपलब्ध हुई हैं। सारनाथ से प्राप्त अजितनाथ की प्रतिमा को डॉ० साहनी ने गुप्त संवत् ६१ की माना है, जो यहाँ काशी संग्रहालय में है।

सीरा पहाड़ की जैन गुफा में तथा उसमें उत्कीर्ण मनोहर तीर्थंकर प्रतिमाओं का निर्माण उसी काल में हुआ। वर्धमान महावीर को दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व जीवन्तस्वामी के नाम से जाना जाता था। जीवन्त-स्वामी की इस काल की दो प्रतिमायें बड़ौदा संग्रहालय[2] में हैं।

छठी सदी के तृतीय चरण में पांडुवंशियों ने शरभपुरीय राजवंश को समाप्त कर दक्षिण कौशल को अपने आधिपत्य में कर श्रीपुर (सिरपुर-रायपुर जिला, म० प्र०) को अपनी राजधानी बनाया। इस काल की एक प्रतिमा सिरपुर से उपलब्ध हुई है, जो तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है।

उत्तर गुप्तकाल में कला के अनेक केन्द्र थे। कला तान्त्रिक भावना से ओत-प्रोत थी। इस काल की एक प्रमुख विशेषता है—कला में चौबीस तीर्थंकरों की यक्ष-यक्षिणी को स्थान प्रदान किया जाना। मध्यकाल में जैन प्रतिमाओं में चौकी पर आठ ग्रहों की आकृति का अंकन है, जो हिन्दुओं के नवग्रहों का ही अनुकरण है।

मध्यकाल में मध्यप्रदेश में जैन धर्म की प्रतिमायें बहुलता से उपलब्ध होती हैं। मध्यप्रदेश में यशस्वी राजवंश कलचुरि, चन्देल एवं परमार नरेशों के काल में यह धर्म भी इस भूभाग में पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। भारतीय जैन कला में मध्यप्रदेश का योगदान महत्वपूर्ण है। अखिल भारतीय परम्पराओं के साथ-साथ मध्यप्रदेश की अपनी विशेषताओं को भी यहाँ की कला ने उचित स्थान दिया।

कलचुरिकालीन तीर्थंकरों की प्रतिमायें आसन एवं स्थानक मुद्रा में प्राप्त हुई हैं। कुछ संयुक्त प्रतिमायें भी

---

१. विदिशा से प्राप्त जैन प्रतिमायें एवं रामगुप्त—शिवकुमार नामदेव, अनेकांत, मई, १९७४, विदिशा से प्राप्त जैन प्रतिमायें एवं रामगुप्त की ऐतिहासिकता, शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अप्रेल, १९७४.

२. अकोटा ब्रोन्ज, यू० पी० शाह, पृ० २६-२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध हुई हैं। विवेच्यकालीन भगवान ऋषभनाथ की सर्वाधिक प्रतिमायें कारीतलाई[1] से प्राप्त हुई हैं। कारीतलाई के अतिरिक्त तेवर (जबलपुर), मल्हार एवं रतनपुर (बिलासपुर) से भी आदिनाथ की प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त अजितनाथ, चन्दप्रभ, शांतिनाथ,[2] नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की भी आसन-प्रतिमायें मिली हैं। इस काल में बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की एक सुन्दर प्रतिमा धुबेला[3] के संग्रहालय में है। कारीतलाई से प्राप्त तीर्थंकरों की द्विमूर्तिका[4] प्रतिमायें रायपुर संग्रहालय में संरक्षित है।

कलचुरिकालीन जैन शासन[5] देवियों की मूर्तियाँ बहुतायत से मिली हैं। ये स्थानक एवं आसन दोनों तरह की हैं। कलचुरि नरेशों के काल में निर्मित अधिकांश प्रतिमायें १०वीं से १२वीं सदी के मध्य की हैं।[6]

मध्यप्रदेश के विश्वप्रसिद्ध कलातीर्थ खजुराहो[7] में चंदेल नरेशों के काल में निर्मित नागर शैली के देवालय अपनी वास्तु एवं मूर्ति संपदा के कारण गौरवशाली हैं। यहाँ के जैन मन्दिरों में जिन-मूर्तियाँ[8] प्रतिष्ठित हैं एवं प्रवेश द्वार तथा रथिकाओं में विविध जैन देवियाँ।

प्रतिहारों के पतन के पश्चात् मालवा में परमारों का राज्य स्थापित हुआ। इनके समय में जैन धर्म मालवा में अपने स्वर्णिम काल में था। निमाड़ में ऊन नामक स्थान के अवशेषों में लगभग एक दर्जन मन्दिर परमार राजाओं के स्थापत्य के उत्तम नमूने हैं। यहाँ के जैन मन्दिरों में सबसे बड़ा चौबारडेरा नामक मन्दिर है। मन्दिरों में अनेक सुन्दर मूर्तियाँ स्थापित हैं। केन्द्रीय संग्रहालय इन्दौर में परमारकालीन तीर्थंकरों की लेखयुक्त प्रतिमायें हैं।

मध्यकाल में मध्यप्रदेश[9] के सुहानिया, पढावली, तिरासी, इन्दौर, टूंडा, धंसौर, बरहटा, मुरार, नागौर एव जसो, सांची, धार, दशपुर, बदनावर, कानवन, बडनगर, उजैन,[10] जावरा, बड़वानी आदि ऐसे कलाकेन्द्र हैं जहाँ जैन प्रतिमायें अवस्थित हैं।

उत्तर प्रदेश में मध्यकालीन जैन प्रतिमायें बहुलता से प्राप्त हुई हैं, जो प्रदेश के विभिन्न संग्रहालयों, देवालयों एवं यत्र-तत्र अवस्थित हैं। प्रयाग-संग्रहालय में अधिकांश जैन प्रतिमायें संरक्षित हैं। उत्तर प्रदेश के अधिकांश स्थलों से जैन यक्षी पद्मावती की प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। झाँसी जिले के चन्देरी में भगवान महावीर की लावण्यमयी प्रतिमा आभा से परिपूर्ण है।

श्रावस्ती के पश्चिम में जैन अवशेष प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। यहीं पर भगवान संभवनाथ का जीर्ण-शीर्ण मन्दिर है। भोंडा जिले के महेत में आदिनाथ की सुन्दर प्रतिमा मिली है। बरेली जिले के अहिच्छत्र से अनेक प्रतिमायें मिली हैं। यहाँ से उपलब्ध पार्श्वनाथ की एक सातिशय प्रतिमा अत्यन्त सौम्य एवं प्रभावशाली है।

---

१. कारीतलाई की अद्वितीय भगवान ऋषभनाथ की प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, अनेकान्त, अक्टूबर-दिसम्बर, १९७३
२. कलचुरिकालीन भगवान शांतिनाथ की प्रतिमायें— शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अगस्त, १९७२
३. धुबेला संग्रहालय की जैन प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, जून, १९७४
४. कारीतलाई की द्विमूर्तिका जैन प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, सितम्बर, १९७५
५. कलचुरिकला में जैन शासन देवियों की मूर्तियाँ—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अगस्त, १९७४
६. भारतीय जैन शिल्पकला को कलचुरि नरेशों की देन, शिवकुमार नामदेव, जैन प्रचारक, सितम्बर-अक्टूबर, १९७४
७. जैन कलातीर्थ खजुराहो—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अक्टूबर, १९७४
८. खजुराहो की अद्वितीय जैन प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, अनेकांत, फरवरी, १९७४
९ मध्यप्रदेश में जैन धर्म एवं कला, शिवकुमार नामदेव, सन्मति संदेश, अप्रेल-मई, १९७५; भारतीय जैन कला को मध्यप्रदेश की देन—शिवकुमार नामदेव, सन्मति वाणी, मई-जून, १९७५
१० जैन धर्म एवं उज्जयिनी—शिवकुमार नामदेव, सन्मतिवाणी, जुलाई, १९७५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्नाटक में जैन धर्म का अस्तित्व प्रथम सदी ई० पू० से ११वीं सदी तक ज्ञात होता है। होयशल नरेश इस मत के प्रबल पोषक थे। इस काल की बृहताकार प्रतिमायें श्रवण बेलगोल, कार्कल एवं बेलूर में स्थापित है। कर्नाटक में देवालय एवं गुफायें—ऐहोल, बादामी, पट्टडकल, लकुण्डी, बंकपुर, बेलगाम, बल्लिगवे आदि में है—जो देवप्रतिमाओं में विभूषित हैं। कर्नाटक में पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षी रही है।[1] कर्नाटक में गोम्मट की अनेक मूर्तियाँ हैं। ई० सन् ६५० की गोम्मट की एक प्रतिमा बीजापुर जिले के बादामी की है।

बंगाल में जैन धर्म का अस्तित्व प्राचीन काल में रहा है। यहाँ के धरापात के एक प्रतिमाविहीन देवालय के तीनों ओर ताकों में विशाल प्रतिमायें थीं, जिनमें पृष्ठभाग वाली में ऋषभदेव, वाम पक्ष से प्रदक्षिणा करते शांतिनाथ आदि थे। ये मूर्तियाँ सम्भवतः आठवीं सदी की हैं। बहुलारा के एक मन्दिर के सामने वेदी पर तीन प्रतिमायें हैं। मध्यवर्ती प्रतिमा भगवान शांतिनाथ की है। इसके अतिरिक्त बांकुड़ा जिले के हाडमासरा के निकट जंगल में एक पार्श्वनाथ की प्रतिमा तथा पाकबेडरा में अनेकों प्रतिमायें संरक्षित हैं।

तामिलनाडु से भी अनेक प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। कलगुमलाई से चतुर्भुज पद्मावती की ललितमुद्रा में (१०-११ वीं) सदी की मूर्ति प्राप्त हुई है।[2] मदुरा तमिलनाडु का महत्वपूर्ण नगर है। यहाँ पर जैन संस्कृति की गौरव-गरिमा में अभिवृद्धि करने वाली कलात्मक सामग्री विद्यमान है।

बिहार प्रदेश से उपलब्ध अनेकों प्रतिमायें पटना संग्रहालय में हैं। सग्रहालय में चौसा के शाहाबाद से प्राप्त जैन धातु मूर्तियाँ भी सुरक्षित हैं। नालन्दा संग्रहालय में भी अनेक मूर्तियाँ संरक्षित हैं।

राजस्थान के ओसियां नामक स्थल में महावीर का एक प्राचीन मन्दिर है, जो ९वीं सदी का है। मन्दिर में महावीर की एक विशालकाय मूर्ति है। इस स्थान से उपलब्ध पार्श्वनाथ की धातुमूर्ति कलकत्ता संग्रहालय में है। जयपुर के निकट चांदनगाँव एक अतिशय क्षेत्र है। यहाँ महावीर के मन्दिर में महावीर की भव्य सुन्दर मूर्ति है। जोधपुर के निकट गांधाणी तीर्थ में भगवान ऋषभनाथ की धातु मूर्ति ९३७ ई० की है। देलवाड़ा में स्थित हिन्दू एवं जैन मन्दिर प्रसिद्ध है। इसी प्रकार राणकपुर के मन्दिर भी सुन्दर हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश में जैन प्रतिमायें बहुसंख्या में उपलब्ध हुई हैं। एलोरा (९वीं सदी) की गुफाएँ तीर्थंकर प्रतिमाओं से भरी पड़ी हैं। छोटा कैलाश (गुहा संख्या ३० लेकर गुहा क्रमांक ३४ तक) की गुहायें जैन-धर्म से सम्बन्धित हैं। अंकाई-तंकाई में जैनों की सात गुफायें हैं जहाँ जैन-प्रतिमायें भी हैं।

गुजरात जैन शिल्पकला की दृष्टि से समृद्ध राज्य रहा है। गुजरात के चालुक्य नरेशों के काल में अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। कुंमारिया एक प्राचीन जैन तीर्थ है। बड़नगर में चालुक्य नरेश मूलराज (९४२-९९७) के काल का आदिनाथ का मन्दिर है। गुजरात के अन्य जैन देवालयों में जैन मत की प्रतिमायें हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थलों से प्राप्त मूर्तियाँ विभिन्न संग्रहालयों की श्रीवृद्धि के साथ-साथ इस प्रदेश में जैन धर्म के प्रचार का द्योतन भी कर रही हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में जैन-मूर्ति निर्माण कला का प्रारम्भ चार हजार वर्ष ई० पू० में हो चुका था। सिन्धु सभ्यता से उपलब्ध प्रतिमायें इस मत की साक्षी हैं। तब से लेकर आज तक यह परम्परा अक्षुण्ण बनी हुई हैं। देश के विभिन्न भागों में उपलब्ध प्रतिमायें इस धर्म की प्राचीनता एवं विकास की ओर इंगित करती हैं।

वास्तुकला

भारतीय वास्तुकला का इतिहास मानव-विकास के युग सम्बद्ध है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका इतिहास

---

१ जैनिज्म इन साउथ इंडिया—देसाई, पी० बी०, पृ० १६३.

२ जैनिज्म इज साउथ इंडिया—देसाई, पी० बी०, पृ० ६५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिन्धु-सभ्यता से प्रारम्भ होता है। भारतीय जैन वास्तुकला[1] का प्रवाह समय की गति और शक्ति के अनुरूप बहता गया। समय-समय पर कलाविदों ने इसमें नवीन तत्वों को प्रविष्ट कराया। वास्तु-निवेश व मानोन्मान सम्बन्धी अपनी परम्पराओं में जैन कला, जैन धर्म की त्रैलोक्य सम्बन्धी मान्यताओं से प्रभावित हुई पाई जाती है। जैन कला के विद्यमान दृष्टान्त उत्कृष्ट कला के प्रतीक हैं।

जैन गुफायें

भारत की सबसे प्राचीन व प्रसिद्ध जैन गुफायें[2] बारावर और नागार्जुन पहाड़ियों पर स्थित हैं। बारावर पहाड़ी (गया से उत्तर में १३ मील) में ४ एवं नागार्जन पहाड़ी (बारावर के उत्तर-पूर्व में लगभग १ मील) में तीन गुफायें हैं। बारावर पहाड़ी की लोमस ऋषि एवं सुदामा तथा नागार्जुन पहाड़ी की गोपी गुफा दर्शनीय हैं। इन गुफाओं का निर्माण मौर्य सम्राट अशोक एवं उसके पौत्र दशरथ ने आजीविक सम्प्रदाय के साधुओं के लिए कराया था। आजीविक यद्यपि मौर्यकाल में एक पृथक् सम्प्रदाय था तथापि ऐतिहासिक प्रमाणों से उसकी उत्पत्ति व विलय जैन सम्प्रदाय में ही हुआ सिद्ध होता है। अतः इन गुफाओं का जैन ऐतिहासिक परम्परा में ही उल्लेख किया जाता है।

उड़ीसा में भुवनेश्वर से ५ मील उत्तर पश्चिम में खण्डगिरि-उदयगिरि की पहाड़ियाँ हैं। वहाँ अधिकांश शैलगृहों का निर्माण साधुओं के निवास के लिए किया गया है। इन गुफाओं का निर्माण ई० पू० दूसरी सदी में हुआ था। उदयगिरि की हाथीगुफा नामक गुहा में ई० पू० दूसरी शती का एक लेख है। उसमें कलिंग के जैन शासक खारवेल का जीवन चरित व उपलब्धियाँ विस्तार से वर्णित हैं। लेख का आरम्भ अर्हतों के एवं सर्वसिद्धों के प्रति नमस्कार के साथ प्रारम्भ हुआ है। उदयगिरि की पहाड़ी में १९ एवं खण्डगिरि में १६ गुफायें हैं। उक्त गुफाओं में से अनेक का निर्माण जैन साधुओं के निवास के लिए, खारवेल के काल में हुआ था। इसकी रानी (अयमहिषी) ने मंचपुरी गुहा की उपरली मंजिल का निर्माण कराया था।

राजगिरि की पहाड़ी में स्थित सोनभंडार नामक गुहा है, जिसका काल सम्भवतः ई० पू० प्रथम शती के लगभग है। प्रयाग तथा प्राचीन कौशाम्बी (कोसम) के निकट स्थित पभोसा में दो जैन गुफायें हैं। लेख से ज्ञात होता है कि इनका निर्माण अहिच्छत्र के आषाढसेन ने काश्यपीय अर्हन्तों के लिए (ई० पू० दूसरी सदी) में कराया था। जूनागढ़ (काठियावाड़) के बाबा प्यारामठ के निकट कुछ गुफायें हैं। कतिपय गुफाओं में जैन चिह्न पाये जाये हैं। इनका निर्माण काल क्षत्रप राजाओं (ई० द्वितीय शती) के समय में हुआ था। इन्हीं के काल की कुछ गुफायें ढंक नामक स्थान पर भी विद्यमान हैं।

मध्यप्रदेश में विदिशा के निकट, बेसनगर से दो मील दक्षिण-पश्चिम तथा सांची से ५ मील पर स्थित लगभग डेढ़ मील लम्बी पर्वत श्रृंखला है। इसी पर्वत श्रृंखला पर उदयगिरि की २० गुहायें एवं मन्दिर हैं। इनमें से दो गुफायें जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। इनमें से एक गुफा में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं दूसरी में कुमारगुप्त प्रथम का लेख है।

ऐतिहासिक परम्परानुसार दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रवेश ई० पू० चौथी शती में हुआ था। कर्नाटक प्रदेश के हसन जिला में स्थित चन्द्रगिरि पहाड़ी पर एक छोटी भद्रबाहु नामक गुफा है। दक्षिण भारत में यही सबसे प्राचीन गुफा है। मद्रास में तंजोर के निकट सित्तनवासल नामक स्थान में एक जैन गुफा है। बम्बई के ऐहोल नामक स्थान के पास बादामी की जैन गुफा उल्लेखनीय है। इसका निर्माण काल लगभग ६५० ई० है। बीजापुर जिले में स्थित ऐहोल के समीप पूर्व एवं उत्तर की ओर गुहायें हैं, जिनमें भी जैन मूर्तियाँ स्थापित हैं। गुफाओं से पूर्व में मेधुरी

---

१ जैन वास्तुकला—संक्षिप्त विवेचन, शिवकुमार नामदेव, श्रमण, दिसम्बर, ७६.

२ भारत में प्राचीन जैन गुफायें—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अक्टूबर, ७६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामक जैन मन्दिर है। अजन्ता से लगभग ५० मील की दूरी पर एलौरा का शिला पर्वत अनेक गुहा-मन्दिरों से अलंकृत है। यहाँ पर पाँच जैन गुफायें हैं जिनका निर्माण काल ८०० ई० के लगभग है।

महाराष्ट्र प्रदेश में उस्मानाबाद से लगभग १२ मील पर स्थित पर्वत में भी गुफायें हैं। तीन गुफाओं में जिन-प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इन गुफाओं का निर्माण काल बर्गेस के मत में ५००-६५० ई० के मध्य में हुआ था। ११वीं शती की कुछ जैन गुफाएँ अंकाई-तंकाई में हैं। मध्यप्रदेश के ग्वालियर नगर में १५वीं सदी में निर्मित तोमर राजवंश के काल की जैन गुफाएँ हैं। उपर्युक्त गुफाओं के अतिरिक्त भारत के विभिन्न भूभागों पर जैन गुफाएँ विद्यमान हैं।

स्तूप-चैत्य, मानस्तम्भ एवं कीर्तिस्तम्भ

प्राचीन जैन स्तूप सुरक्षित अवस्था में विद्यमान नहीं हैं। मथुरा जो जैन धर्म का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, वहाँ अनेक स्तूपों एवं विहारों का निर्माण हुआ था। मथुरा में दो प्रमुख स्तूपों का निर्माण शुंग और कुषाण काल में हुआ था। मध्यकाल में भारत में जैन देवालय के सामने विशाल-स्तम्भों के निर्माण की परम्परा थी। चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ कला की भव्यता का मूक साक्षी है। कीर्तिस्तम्भ एवं मानस्तम्भ के भी उदाहरण उपलब्ध हैं।

मन्दिर

पुरातन जैन अवशेषों में मन्दिरों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में सबसे प्राचीन जैन मन्दिर जिसकी रूपरेखा सुरक्षित है, वह है ऐहोल का मेगुटी मन्दिर। इसका निर्माण ६३४ ई० में कराया गया था।

उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले में स्थित देवगढ़ के जैन मन्दिरों में केवल क्रमांक १२ एवं १५ ही अधिक सुरक्षित हैं, इन प्रतिहारकालीन मन्दिरों के निर्माण की तिथि ९वीं शती ई० है। राजस्थान के मन्दिरों में ओसियां (जिला जोधपुर) के महावीर मन्दिर का निर्माण प्रतिहारनरेश वत्सराज (७८३-९२) के समय में हुआ था। अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस मन्दिर का प्रवेश मण्डप ९५६ ई० में पुनर्निर्मित किया गया था तथा १०५६ ई० में एक अलंकृत तोरण का निर्माण हुआ था। घानेराव (जिला पाली) के महावीर मन्दिर का गर्भगृह आकार में त्रिरथ है। इस मन्दिर की तिथि १०वीं सदी ई० है। उदयपुर के निकट स्थित अहाड का महावीर मन्दिर १०वीं सदी के अन्त की रचना है। कुंभारियाजी (जिला बनासकांठा) में जैन मन्दिरों का एक समूह है, जिनका काल ११वीं सदी है। आबू पर्वत पर बने हुए जैन मन्दिरों की अपनी एक निराली शान है। यहाँ ४-५ हजार फीट ऊँची पहाड़ी की हरी भरी घाटी में जैन मन्दिर हैं। इसे देलवाड़ा कहते हैं। देलवाड़ा के जैन मन्दिरों पर सोलंकी शैली का प्रभाव है। इन मन्दिरों में विमलवसहि एवं लूणवसहि प्रमुख हैं। प्रथम का निर्माण १०३१ ई० में विमलशाह ने कराया था। इस मन्दिर में विमल-शाह के वंशज पृथ्वीपाल ने ११५० ई० में सभामण्डप की रचना करायी थी। मन्दिर आदिनाथ को समर्पित किया गया है। द्वितीय मन्दिर का निर्माण १२३० में वस्तुपाल-तेजपाल बन्धुओं ने, जो गुजरात के चालुक्य नरेश के मन्त्री थे, कराया था।

गुजरात में जैन मन्दिर शत्रुंजय एवं गिरनार की पहाड़ी पर स्थित हैं। गिरनार (जिला जूनागढ़) में स्थित आदिनाथ मन्दिर का निर्माण एक जैन मन्त्री वस्तुपाल ने कराया था। इसी के समकालीन तरंग का बृहत जैन मन्दिर है जिसका निर्माण कुमारपाल ने कराया था।

जैनियों ने अनेक तीर्थस्थानों में विशाल कलात्मक मन्दिरों का निर्माण कराया था। बिहार में पारसनाथ, कर्नाटक में श्रवणबेलगोला, मध्यप्रदेश में खजुराहो, कुण्डलपुर, मुक्तागिरि तथा दक्षिण भारत में मुड़-बिद्रि एवं गुरु-वायंकेरी के मन्दिरों में मन्दिर निर्माण कला का विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है। मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले में स्थित ऊन में दो जैन मन्दिर हैं जो भूमिज मन्दिर वर्ग समूह के हैं। राजस्थान में भूमिज शैली का प्राचीन मन्दिर पाली जिले में स्थित सेवरी का महावीर मन्दिर है, यह मन्दिर रूपरेखा में पंचरथ है। इसका काल १०१०-१०२० ई० ज्ञात होता है। इस शैली का एक अन्य प्राचीन मन्दिर मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में स्थित आरंग का जैन मन्दिर है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो मांडदेवल के नाम से जाना जाता है, इसका निर्माण ११वीं सदी में हुआ था। जगतविख्यात वास्तुशिल्प केन्द्र खजुराहो के मन्दिरों में पार्श्वनाथ, आदिनाथ एवं शान्तिनाथ के मन्दिर उल्लेखनीय हैं।

चित्रकला

जैन चित्रकला की अपनी विशिष्ट परम्परा रही है। ताड़पत्रों, वस्त्रों एवं कागजों पर बने चित्र अत्यन्त प्राणवान, रोचक और कलापूर्ण हैं। जहाँ तक जैन भित्ति-चित्रकला का प्रश्न है, इसके सबसे प्राचीन उदाहरण तंजोर के समीप सित्तनवासल की गुफा में मिलते हैं। इनका निर्माण पल्लवनरेश महेन्द्रवर्मा प्रथम के राज्यकाल (६२५ ई०) में हुआ था।

जहाँ तक ताड़पत्रीय चित्रों का सम्बन्ध है, इनका काल ११वीं शती से १४वीं शती तक रहा। सबसे प्राचीन चित्रित ताड़पत्र ग्रन्थ कर्नाटक के मुड़बिद्रि तथा पाटन (गुजरात) के जैन भण्डारों में मिले हैं।

कागज की सबसे प्राचीन चित्रित प्रति १४२७ में लिखित कल्पसूत्र है, जो सम्प्रति लन्दन की इण्डिया ओफिस लाइब्रेरी में है। जैन शास्त्र भण्डारों में काष्ठ के ऊपर चित्रकारी के कुछ नमूने प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार चित्रकला के आधार पर जैन धर्म की प्राचीनता ७वीं सदी ई० तक ज्ञात कर सकते हैं। परन्तु कतिपय कला-समीक्षकों ने जोगीमारा गुफा (म०प्र०) में चित्रित कुछ चित्रों का विषय जैन धर्म से सम्बन्धित बताया है। यदि इसे आधार मानें दो इस धर्म की चित्रकला की प्राचीनता ३०० ई० पू० तक मानी जा सकती है।

उपर्युक्त विवेचन के सम्यक् परीक्षण के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि जैन धर्म एक अत्यन्त प्राचीन धर्म है। सिन्धु सभ्यता से प्राप्त धड़ के आधार पर इस मत की प्राचीनता ४ हजार वर्ष ई०पू० तक जाती है। अवध, तिरहुत, बिहार के प्रान्तों में आरम्भ से ही जैन धर्म प्रचलित हो गया था। उड़ीसा के उदयगिरि एवं खण्डगिरि की सर्वविदित गुफाओं का काल ई०पू० दूसरी सदी है। कुषाणकाल में जैन मत मथुरा में भली भाँति प्रचलित था। राजस्थान, कठियावाड़-गुजरात आदि में वह काफी लोकप्रिय था। ७वीं सदी में बंगाल से लेकर तमिलनाडु तक वह फैला था। मध्ययुग में देश के विभिन्न-भागों में निर्मित जैन कला-कृतियाँ इस मत के विकास एवं प्रसार को सूचित करती हैं। सारांश यह है कि कलात्मक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईस्वी सन् की पहली शताब्दी तक जैन धर्म का प्रचार, मगध, उड़ीसा, विदर्भ, गुजरात आदि प्रदेशों में अर्थात् समस्त उत्तर भारत में हो चुका था। दक्षिणी भारत में जैन धर्म का प्रचार ईसा पूर्व तीन सौ वर्ष से आरम्भ हुआ और ईसा के १३०० वर्ष बाद तक वहाँ इसका खूब प्रचार रहा।

□□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org